# त्रास

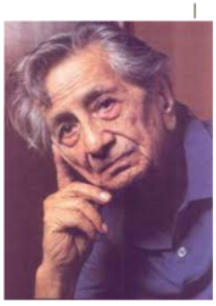

भीष्म साहनी

# त्रास

ऐक्सिडेंट पलक मारते हो गया। और ऐक्सिडेंट की जमीन भी पलक मारते तैयार हुई। पर मैं गलत कह रहा हूँ। उसकी जमीन मेरे मन में वर्षों से तैयार हो रही थी। हाँ, जो कुछ हुआ वह जरूर पलक मारते हो गया।

दिल्ली में प्रत्येक मोटर चलानेवाला आदमी साइकिल चलानेवालों से नफरत करता है। दिल्ली के हर आदमी के मस्तिष्क में घृणा पलती रहती है और एक-न-एक दिन

किसी-न-किसी रूप में फट पड़ती है। दिल्ली की सड़कों पर सारे वक्त घृणा का व्यापार चलता रहता है। बसों में धक्के खाकर चढ़नेवाले, भाग-भगकर सड़कें लाँघनेवाले, भोंपू बजाती मोटरों में सफर करनेवाले सभी किसी-न-किसी पर चिल्लाते, गालियाँ बकते, मुड़-मुड़कर एक-दूसरे को दाँत दिखाते जाते हैं। घृणा एक धुंध की तरह सड़कों पर तैरती रहती है।

पिछले जमाने की घृणा कितनी सरल हुआ करती थी, लगभग प्यार जैसी सरल। क्योंकि वह घृणा किसी व्यक्ति विशेष के प्रति हुआ करती थी। पर अनजान लोगों के प्रति यह अमूर्त घृणा, मस्तिष्क से जो निकल-निकलकर सारा वक्त वातावरण में अपना जहर घोलती रहती है।

वह साइकिल पर था और मैं मोटर चला रहा था। न जाने वह आदमी कौन था। मोटर के सामने आया तो मेरे लिए उसका कोई अस्तित्व बना, वरना असंख्य लोगों की भीड़ में खोया रहता जिस पर मेरी तैरती नजर घूमती रहती है। दुर्घटना के ऐन पहले उसने सहसा मुड़कर मेरी ओर देखा और क्षण-भर के लिए हमारी आँखें मिली थी। उसकी गँदली-सी आँखों में अपने को सहसा विकट स्थिति में पाने की उद्भ्रांति थी, सहसा वे आँखें फैल गईं थीं। न जाने उसे मेरी आँखों में क्या नजर आया था।

ऐन दुर्घटना के क्षण तक पहुँचते-पहुँचते मेरा मस्तिष्क धुँधला जाता है, मेरी चेतना दाएँ पैर के पंजे पर आकर लड़खड़ा जाती है और सारा दृश्य किसी टूटते घर की तरह असंबद्ध हो उठता है क्योंकि मैंने उस क्षण अपने दाएँ पैर के पंजे के ऐक्सीलरेटर को जान-बूझकर दबा दिया था। ब्रेक को दबाने की बजाय, ऐक्सीलरेटर को बदा दिया था, मोटर की रफ्तार धीमी करने की बजाय मैंने उसे और तेज कर दिया था। मैंने ऐक्सीलरेटर को ही नहीं दबाया, उसके पीछे गाड़ी को तनिक मोड़ा भी, जब वह मेरे सामने से रास्ता काटकर लगभग आधी सड़क लाँघ चुका था तभी उसने घबराकर मेरी ओर देखा था। फिर खटाक् का शब्द हुआ था, और कोई चीज उछली थी, जैसे चील झपट्टा मारती है।

जब पहली बार मेरी नजर उस पर गई तो वह मेरे आगे सड़क के किनारे-किनारे बाएँ हाथ बढ़ता जा रहा था। तब भी मेरे मन में उसके प्रति घृणा उठी थी। वह थुल-थुल-सा ठिगने कद का आदमी जान पड़ा था, क्योंकि उसके पैर मुश्किल से साइकिल के पैडलों तक पहुँच पा रहे थे। टखनों के ऊपर लगभग घुटनों तक उठे हुए उसे पाजामे को देखकर ही मेरे दिल में नफरत उठी थी या उसकी काली गर्दन को देखकर। अभी वह दूर था और आसपास चलती गाड़ियों की ही भाँति मेरे दृष्टि-क्षेत्र में आ गया था। फिर

वह सहसा अपना दायाँ हाथ झुला-झुलाकर मुड़ने का इशारा करते हुए सड़क के बीचोबीच आने लगा था। हाथ झुला-झुलाकर मुड़ने का इशारा करते हुए सड़क के बीचोबीच आने लगा था। हाथ झुला-झुलाकर वह जैसे मुझे ललकार रहा था। तभी मेरे अंदर चिंगारी-सी फूटी थी। अब भी याद आता है तो सबसे पहले उसका घुटनों तक चढ़ा हुआ पाजामा और काली गर्दन आँखों के सामने आ जाते हैं। वह आदमी दफ्तर का बाबू भी हो सकता था, किसी स्कूल का अध्यापक भी हो सकता था, छोटा-मोटा दुकानदार भी हो सकता था। सुअर का पिल्ला, देखूँ तो कैसे मोड़ काट जाता है। यह भी कोई तरीका है सड़क पार करने का? उसी लमहे-भर में मैंने ऐक्सीलरेटर को दबा दिया था और मोटर को तनिक मोड़ दिया था। तभी उसने हड़बड़ाकर पीछे की ओर देखा था...।

वह क्षण तृप्ति का क्षण था, विष-भरे संतोष का। सुअर का बच्चा, अब आए तो मेरे सामने। लेकिन 'खटाक्' शब्द के साथ ही एक हड़बड़ाती आवाज-सी उठी, और एक पुंज-सा जमीन पर गिरता आँखों के सामने कौंध गया, कुछ वैसे ही जैसे कोई चील झपट्टा मारकर पास से निकल गई हो।

पर इस क्षण को लोप होते देर नहीं लगी और मेरा मन लड़खड़ा-सा गया। यह मैं क्या कर बैठा हूँ? किसी बात को चाहना एक बात है और सचमुच कर डालना बिल्कुल दूसरी बात। कहीं कोई चीज टूटी थी। मेरे मन की स्थिति वैसी ही हो रही थी जैसे कोई आदमी बड़े आग्रह से किसी घर के अंदर घुसे, पर कदम रखते ही घर की दीवारें और छत और खिड़कियाँ ढह-ढहकर उसके आसपास गिरने लगें। यह मैं क्या कर बैठा हूँ? चलते-चलाते मैंने बखेड़ा मोल ले लिया है।

मैंने ऐक्सीलरेटर को फिर से दबा दिया। हड़बड़ाते मुसितष्क में से आवाज आई, निकल चलो यहाँ से; पीछे मुड़कर नहीं देखो और निकल जाओ यहाँ से।

पर मेरा अवचेतन ज्यादा सचेत था। उसका संतुलन अभी नहीं टूटा था। वर्षों पहले किसी ने कहा था कि ऐक्सिडेंट के बाद भागने से जोखम बढ़ता है, बखेड़े उठ खड़े होते हैं। मेरा पैर ऐक्सीलरेटर पर से हट गया, टाँगों में कंपन हुआ और मोटर की रफ्तार धीमी पड़ गई। फिर वह अपने-आप ही जैसे बाएँ हाथ की पटरी के साथ लगकर खड़ी हो गई। मोटर की गति थमने की देर थी कि मेरी टाँगों में पानी भर गया और सारे बदन पर ठंडा पसीना-सा आता महसूस हुआ। यह मैं क्या कर बैठा हूँ। यह अनुभव तो दिल्ली में सभी के साथ गाहे-बगाहे होता है, घृणा के आवेश में कुछ कर बैठो और फिर काँपने लगो।

सड़क पर शाम के हल्के-हल्के साए उतर आए थे, वह समय जब अँधेरे के साथ-साथ झीना-सा परायापन सड़कों पर उतर आता है, जब चारों ओर हल्की-हल्की धूल-सी उड़ती जान पड़ती और आदमी अकेला और खिन्न और निःसहाय-सा महसूस करने लगता है। सड़क पर आमदरफ्त कम हो चुकी थी। बत्तियाँ अभी नहीं जली थीं। मैं मोटर का दरवाजा खोलकर नीचे उतर आया। दो-एक मोटरें उसी दिशा में आती हुई धीमी हुई। सड़क के पार पटरी पर कोई औरत चलते-चलते रुक गई थी और सड़क की ओर देखे जा रही थी। उसका हाथ थामे उसके साथ एक बच्चा था।

मैंने उतरते ही सबसे पहले आगे बढ़कर मोटर का बोनट देखा, बत्तियाँ देखीं, पहलू को ऊपर से नीचे तक देखा कि कहीं कोई 'चिब' तो नहीं पड़ा या खरोंच तो नहीं आई, या कहीं रंग उधड़ा हो। नहीं, कहीं कुछ टेढ़ा नहीं हुआ था, मोटर को कहीं जख नहीं आई थी। फिर मैं तेवर चढ़ाए पीछे की ओर घूम गया, जहाँ सड़क के बीचोबीच वह आदमी गठरी-सा बना पड़ा था, और उसकी साइकिल का पिछला पहिया टेढ़ा होकर अभी भी घूमे जा रहा था।

बचाव का एक ही साधन है, हमला। फटकार से बात शुरू करो। अपनी घबराहट जाहिर करोगे तो मामला बिगड़ जाएगा, लेने-के-देने पड़ जाएँगे।

"यह क्या तरीका है साइकिल चलाने का? चलाते-चलाते मुड़ जाते हो? अगर मर जाते तो क्या होता...?"

"इधर हाथ देते हो, उधर मुड़ जाते हो।"

न हूँ, न हाँ! धूप में झुलसा चौड़ा-सा चेहरा और उड़ते खिचड़ी बाल। उसके लिए उठ बैठना कठिन हो रहा था। शायद जान-बूझकर हिल-डुल नहीं रहा था। मेरे अवचेतन ने फिर मुझे उसकी ओर धकेला, इसकी बाँह थामकर इसे उठा दो। स्थिति सँभालने का यही तरीका है। मैंने आगे बढ़कर साइकिल को उस पर से हटाया और उस काले-कलूटे को गर्दन के नीचे हाथ देकर बैठा दिया। उसने फटी-फटी आँखों से मेरी ओर देखा। उसकी नजर में अब भी पहले-सी भ्रांति और त्रास था और वह बेसुध हो रहा था। भूचाल के बाद जैसे कोई आँखें खोले और समझने की कोशिश करे कि कहाँ पर पटक दिया गया है। खून की बूँदें उसके खिचड़ी बालों में कहीं से निकल-निकलकर उसके कोट के कालर पर गिर रही थीं।

सड़क पार की ओर से किसी के चिल्लाने की आवाज आई :

"ऐसा तेज चलाते हैं जैसे सड़क इनके बाप की है। आदमी को मार ही डालेंगे..."

पटरी पर घाघरेवाली बागड़न औरत अपनी बच्ची का हाथ थामे खड़ी चिल्ला रही थी। उसने ऐक्सिडेंट को होते देखा था। ऐसे आदमी बहुत कम होते हैं जिन्होंने ऐक्सिडेंट को होते देखा हो, और वे अपनी गवाही चिल्ला-चिल्लाकर देना चाहते हैं।

मेरे दाएँ हाथ की पटरी पर एक आदमी ठिठककर खड़ा हो गया। किंकर्तव्यविमूढ़, मैंने घूमकर देखा। कोई वयोवृद्ध था, सूट-बूट पहने, छड़ी डुलाता पटरी पर ठिठका खड़ा था। मेरे देखने पर, पटरी पर से उतर आया।

"सभी ऐक्सिडेंट साइकिलोंवाले करते हैं, वह...। इन्हें बड़ी सड़कों पर आने की इजाजत ही नहीं होनी चाहिए, बात...।"

अँगरेजों के जमाने की गाली दे रहा था। तौर-तरीके से भी अँगरेजों के जमाने का रिटायर्ड अफसर जान पड़ता था। कोट-नैकटाई लगाए, हाथ में छड़ी लिए घूमने निकला था। अपनी-अपनी तौफीक के मुताबिक अपने-अपने हमदर्द सभी को जुट जाते हैं। मेरा हौसला बढ़ गया।

"मैंने मोटर रोक ली तो बच गया, नहीं तो इसका भुर्ता बन गया होता।"

मैंने ऊँची आवाज में कहा और मेरे जिस्म में आत्मविश्वास की हल्की-सी लहर दौड़ गई। उसी क्षण मुझे जगतराम सुपरिनटेंडेंट का भी ख्याल आया। मेरे भाई का साढ़ू है, पुलिस का अफसर है। मामला बिगड़ गया तो उसे टेलीफोन भी कर देने की जरूरत है। अपने-आप स्थिति को सँभाल लेगा।

मैं वहाँ से चलने को हुआ। मैंने दोनों हाथ पतलून की जेबों में डाल लिए और मेरी टाँगों में स्थिरता आ गई।

सूट-बूटवाला बुजुर्ग मेरे पास आ गया था और फुसफुसाकर कह रहा था :

"इसे अस्पताल में छोड़ आओ। जैसे भी हो यहाँ से हटा ले जाओ। पुलिस आ गई तो बखेड़ा उठ खड़ा होगा। वहाँ पर दो-चार रुपये देकर मामला निबटा लेना...।"

पुलिस के नाम पर फिर मेरी आँखों के सामने जगतराम सुपरिनटेंडेंट का चेहरा घूम गया। फिर से बदन में आत्मविश्वास की लहर दौड़ गई। मैंने आँख घुमाकर काले-कलूटे की ओर देखा। वह दोनों हाथों में अपना सिर थामे वहीं का वहीं बैठा था। खून की बूँदें रिसना बंद हो गई थीं और कालर पर चौड़ा-सा खून का पैबंद लग गया

था। कोई क्लर्क है शायद। कितने का आसामी होगा? कितने पैसे देने पर मान जाएगा?

सड़क पार से फिर से चिल्लाने की आवाज आई :

"हमारे सामने पीछे से टक्कर मारी है। हमने अपनी आँखों से देखा है...।"

औरत ने तीन राह जाते आदमी घेर लिए थे, और अब वे सड़क के पार खड़े मेरी ओर घूरे जा रहे थे।

"अगर पुलिस आ गई तो मोटर को यहीं पर छोड़कर जाना पड़ेगा। ख्वाहमख्वाह का पचड़ा खड़ा हो जाएगा, बरखुरदार...।"

सूट-बूटवाले सज्जन बड़ी सधी हुई आवाज में बड़ा सधा हुआ परामर्श दे रहे थे।

मैं फिर ऊँची आवाज में सड़क के पार खड़े लोगों को सुनाने के लिए बोला :

"जिस तरह तुम झट-से मुड़ गए थे टक्कर होना लाजमी था। गनीमत जानो कि मैंने गाड़ी रोक ली वरना तुम्हारी हड्डी-पसली नहीं बचती। अगर इसी तरह साइकिल चलाओगे, तो किसी-न-किसी दिन जान से हाथ धो बैठोगे...।"

मेरी आवाज में समाजसेवा की गूँज आ गई थी और मुझे इस बात का विश्वास होने लगा था कि मैंने सचमुच इस आदमी को बचाया है। इसे गिराया नहीं। उस आदमी ने सिर ऊपर उठाया। उसकी आँखों में अभी भी त्रास छाया था, लेकिन मुझे लगा जैसे उसकी आँखें मस्तिष्क में छिपे मेरे इरादों को देख रही है। त्रास के साथ-साथ कृतज्ञता का भाव भी झलक आया है।

"मेरी मानो, इसे अस्पताल पहुँचा दो।" बुजुर्ग ने फिर से फुसफुसाकर कहा।

लेकिन मेरा कोई इरादा उसे अस्पताल पहुँचाने का नहीं था। मेरे भाई का हमजुल्फ जगतराम, सब मामला सँभाल लेगा। उसे टेलीफोन पर कहने की देर है।

थुलथुल के बालों में से खून रिसना बंद हो गया था। उधेड़ उम्र बड़ी खतरनाक होती है, बुरी तरह से घायल होने के लिए भी और दूसरों को परेशान करने के लिए भी।

मैंने फिर से हाथ पतलून की जेब में डाला, जिसमें दो नोट रखे थे, एक पाँच रुपये का, दूसरा दस रुपये का। ज्यो-ज्यों मेरा डर कम होता जा रहा था, उसी अनुपात में मेरी

दुविधा यह किसी भी प्रकार की मदद का हकदार नहीं है, जिस तरह इसने झट-से साइकिल को मोड़ दिया था ऐक्सिडेंट होना जरूरी था।

जेब में से पाँच रुपये का नोट निकालने से पहले मैंने मुड़कर देखा। सूट-बूटवाला बुजुर्ग जा चुका था। दूर छड़ी झुलाता, लंबे-लंबे साँस लेता, आगे बढ़ गया था। मुझे अकेला अपने हाल पर छोड़ गया था। मुझे धोखा दे गया था। मैं अकेला, दुश्मनों से घिरा महसूस करने लगा। दो छोटे-छोटे लड़के भी मेरी बगल में आकर खड़े हो गए थे, और उन्होंने थुलथुल को पहचान लिया जान पड़ता था।

"गोपाल के बापू हैं। हैं ना!" एक ने दूसरे से सहमी-सी आवाज में कहा। मगर ये दोनों दूर ही खड़े रहे, और थुलथुल को देखते रहे, कभी उसकी ओर देखते, कभी मेरी ओर।

मैं अभी पाँच का नोट अंगुलियों में मसल ही रहा था कि पुलिस आ गई। कोई आदमी चिल्लाया : "पुलिस। पुलिस आ गई है।"

मैं चूक गया हूँ। उस वक्त निकल जाता तो निकल जाता। अग तो यह आदमी भी तेज हो जाएगा। बावेला मचाएगा, पुलिस को अपने जख्म दिखाएगा। साइकिल का टेढ़ा पहिया दिखाएगा। भीड़ इकट्ठी कर लेगा। मुझे परेशान करेगा। पटरी पर वह बागड़न औरत अभी भी खड़ी थी और उसकी बच्ची रोए जा रही थी।

आने दो पुलिस को, मन-ही-मन कहा। जगतराम सुपरिन्टेंडेंट का नाम उनके आते ही कह देना होगा। वरना उन्होंने अगर चालान लिख दिया तो फिर उसे नहीं फाड़ेंगे।

लोग नजदीक आने लगे थे। घेरा-सा बनने लगा था। और मैं कह रहा था, आने दो, जगतराम का नाम छूटते ही सुना देना होगा, देर हो गई और चालान लिख डाला गया तो वे पुर्जा नहीं फाड़ेंगे।

पर दूसरे क्षण मैं लपककर थुल-थुल के ऊपर झुक गया था और उसे बाजू का सहारा देकर उठा रहा था।

"चलो, तुम्हें अस्पताल पहुँचा आऊँ। उठो, देर नहीं करो...।"

मैंने उसे बाजू का सहारा इसलिए दिया था कि आस-पास के लोग देख लें कि मुझे उस आदमी के साथ हमदर्दी है, पुलिसवाले भी देख लें कि मेरे मन में द्वेषभाव नहीं है।

उसने आँखें फेरकर मेरी ओर देखा, सहसा उठ खड़ा हुआ। मुझे लगा जैसे उसका शरीर सहसा बड़ा हल्का हो गया है और बिना मेरी मदद के अपने-आप चलने लगा है। वह

उठा ही नहीं, लड़खड़ाता हुआ मोटर की ओर चल दिया। मैंने पहले तो सोचा कि वह अपना साइकिल उठाने जा रहा है। पर वह सीधा मोटर के पास जा पहुँचा और हत्थी को पकड़कर दरवाजे के शीशे के साथ माथा टिकाकर खड़ा हो गया।

यह क्या करने जा रहा है? वहाँ पर जाकर खड़ा हो गया? मैं लपककर आगे बड़ा, चाभी से डिक्की का दरवाजा खोला, टेढ़े पहिए समेत साइकिल को उसके अंदर ठूँसा, फिर उस आदमी के लिए कार का दरवाजा खोलकर उसे अंदर धकेल दिया और पलक मारते गाड़ी चला दी।

अस्पताल में पहुँचने से पहले ही मुझे पूर्ण सुरक्षा का भास होने लगा। मुझे अपनी कर्मठता पर और चुस्ती पर गर्व होने लगा था। कोई और होता तो ऐक्सिडेंट के हो जाने के बाद, और पुलिस के आ जाने पर किंकर्तव्यविमूढ़, मुँह बाए खड़ा रहता। अब इसे अस्पताल के बरामदे में पटकूँगा और सीधा घर की ओर निकल जाऊँगा।

मोटर चलने पर किसी ने गाली दी थी। दो आदमी कार की ओर लपके भी थे। गाली मुझे दी गई थी या उस आदमी को, मैं नहीं जानता। लेकिन मोटर बड़ी खूबसूरती से लोगों की गाँठ को चीरती हुई सर्र करके निकल गई थी और अब मैं कैजुअल्टी वार्ड के बरामदे में खड़ा था और अंदर उसकी पट्टी हो रही थी।

मैंने अंदर झाँककर देखा तो अधलेटे-लेटे उसने मेरे सामने हाथ बाँध दिए और देर तक हाथ जोड़े रहा। एक क्षीण, विचित्र-सी मुस्कान भी उसके चेहरे पर आ गई थी। क्षण-भर के लिए मुझे लगा जैसे सिर की चोट के कारण वह पगला गया है। जितनी देर मैं उसके सामने रहा, वह छाती पर दोनों हाथ बाँधे मेरी ओर देखे जा रहा था। मैं ठिठककर वहाँ से हट गया और बरामदे में टहलने लगा, लेकिन थेड़ी देर बाद जब मैंने फिर दरवाजे में से अंदर झाँका तो वह अभी भी छाती पर हाथ बाँधे मेरी ओर देख रहा था। क्या यह सचमुच पगला हो गया है?

मैं धीरे-धीरे चलता हुआ उसके पास जा पहुँचा।

"अच्छे करम किए थे जो आपके दर्शन हो गए।..." वह बोला और हाथ जोड़े रहा।

मैं ठिठककर खड़ा हो गया। यह क्या बक रहा है?

फिर सहसा वह, अपनी पट्टियों के बावजूद दोनों हाथ बढ़ाकर नीचे की ओर झुका, और मेरे पैरों को छूने की कोशिश करने लगा।

मैं पीछे हट गया।

उसने फिर हाथ बाँध दिए।

"मेरे अच्छे करम थे साहिब, जो आपकी मोटर से टककर हुई...।"

यह कौन-सा स्वाँग रचने लगा है? क्या यह सचमुच होश में नहीं है? पर वह दोनों हाथ बाँधे, दाएँ से बाएँ अपना सिर हिला रहा था।

पीछे बरामदे में हलचल सुनाई दी, एक स्त्री, दो छोटे-छोटे लड़कों के साथ, बदहवास-सी, वार्ड में घूमती हुई अंदर आ रही थी। अंदर की ओर झाँकते ही वह लपककर उस आदमी की खाट की ओर आ गई। दोनों लड़के भी उसके पीछे-पीछे भागते हुउ अंदर आ गए।

"हाय, तुम्हे क्या हुआ? कहाँ चोट आई है?" और वह फटी-फटी आँखों से उसके सिर पर बँधी पट्टियों की ओर देख रही थी।

यह उसकी पत्नी रही होगी, मैंने मन-ही-मन समझ लिया। हादसे की खबर इस तक पहुँच गई है। अस्पताल में आने पर सुरक्षा का भाव जो मन में उठा था वह लड़खड़ा-सा गया। पहले ही से उसके सनकी व्यवहार पर मैं हैरान हो रहा था। मन में आया निकल चलूँ, अब और ज्यादा ठहरने में जोखिम है।

पर वह आदमी अपने दो बालकों से कह रहा था :

"पालागन करो, जाओ, जाओ, पालागन करो।"

और दोनों लड़के, राम-लछमन की तरह हाथ बाँधे मेरे पैर छूने के लिए आगे बढ़े आ रहे थे।

स्त्री ने तनिक घूमकर मेरी ओर देखा। वह बेहद घबराई हुई थी।

"इनके आगे माथा नवाओ। इन्हें नमस्कार करो। करो, करो।" वह अपनी पत्नी से कह रहा था।

औरत हत्बुद्धि-सी सिर पर पल्ला करके मेरे सामने झुकी।

"मुझे मौत के मुँह से निकाल लाए हैं। सड़क पर पड़े आदमी को कौन उठाता है? यह मुझे उठा लाए हैं।" वह बोले जा रहा था, "उधर पुलिस आ गई थी। यह मुझे पुलिस के

हाथ से खींचकर ले आए हैं। मैंने अच्छे करम किए थे, आप तो भगवान के अवतार होकर उतरे हैं। इस कलियुग में कौन किसी को सड़क पर से उठाता है। आपके हाथ से बहुतों का भला होगा।..."

थुलथुल गिड़गिड़ा रहा था। वह पगलाया नहीं था, उसकी बकवास के पीछे कोई षड्यंत्र भी नहीं था, केवल त्रास था, दिल्ली की सड़कों का त्रास।

मैंने इत्मीनान की साँस ली।

"नहीं-नहीं, ऐसा नहीं कीजिए," अपनी ओर गले में पल्ला डाले झुकी हुई उसकी पत्नी को संबोधन करते हुए मैंने कहा। मेरी आवाज में मिठास आ गई थी, तनाव दूर हो गया था।

"नहीं-नहीं, मैंने केवल अपना फर्ज पूरा किया है। एक इनसान के नाते मेरा फर्ज था।" फिर सद्भावनापूर्ण परामर्श देते हुए बोला, "लेकिन आपको साइकिल ध्यान से चलानी चाहिए। दिल्ली में हादसे बहुत होते हैं। बल्कि मैं तो कहूँगा कि आपको इस उम्र में साइकिल चलानी ही नहीं चाहिए। इससे तो पैदल चलना बेहतर है।..."

"आपकी दया बनी रहे..." उसने बुदबुदाकर कहा।

"नहीं-नहीं, एक इनसान के नाते यह मेरा फर्ज था। और किसी चीज की जरूरत हो तो बताओ, मैं भिजवा दूँगा..."

उसने फिर हाथ जोड़ दिए और सिर हिलाने लगा। दयालुता और आत्मश्रद्धा के आवेश में मेरा हाथ फिर पतलून की जेब में गया, जहाँ दो नोट पड़े थे। मैंने उँगलियों से दोनों नोट अलग-अलग किए। पाँच दूँ या दस? दस दूँ या पाँच? आसामी तो पाँच का नजर आता है। फिर तभी हाथ रुक गया। यह क्या बेवकूफी करने जा रहे हो? यह क्या कम है कि इसे अस्पताल में उठा लाए हो? यह है कौन जिसके प्रति इतने पसीनजे लगे हो? न जान, न पहचान ...

मैंने आँख उठाकर उसकी और देखा। छाती पर हाथ बाँधे वह अभी भी श्रद्धा से सिर हिलाए जा रहा था। लिजलिजी, लसलसी-सी श्रद्धा, जिसे देखकर फिर से मन में घृणा की लहर उठने लगी, और मैं वहीं से बाहर की ओर घूम गया।